IJAER/May-June- 2020/Volume-8/Issue-6/Article No-2/ 8-11 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

उच्च शिक्षा में चुनौतियों का विश्लेषण

धर्मेन्द्र आर्य
शोधार्थी
सिंघानिया विश्वविद्यालय,
झुंनझुंनु,राजस्थान

डॉ. वीना वाम्बा
शोध निर्देशक
सिंघानिया विश्वविद्यालय,
झुंनझुंनु,राजस्थान

सार:
सा विद्या या शास्ति, सा विद्या या विमुक्तये।
अर्थात, जो हमें अनुशासित करती है, वह विद्या है,जो हमें मुक्ति देती है वह विद्या है। स्पष्ट है कि शिक्षा वह संजीवनी है, जो अज्ञानतारूपी मरुस्थल में भी ज्ञान की गंगा बहाती है। शिक्षा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की प्रगति के लिए आवश्यक है। शिक्षा अंधेरे से उजाले की ओर ले जाती है। जीवन प्रकाशमान करती है। चेतना का संचार करती है। जागरुक बनाती है। समाज में व्याप्त अंधविश्वास, असमानता और गैर–बराबरी को दूर करती है।इस बात का समर्थन भारत के समस्त धर्मगुरूओं और विद्वानो द्वारा समय–समय पर अपने–अपने धर्मशास्त्रों में किया है।

प्रस्तावना:
उच्च शिक्षा का अर्थ है सामान्य रूप से सबको दी जानेवाली शिक्षा से ऊपर किसी विशेष विषय या विषयों में विशेष, विशद तथा सूक्ष्म शिक्षा। यह शिक्षा के उस स्तर का नाम है जो विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक विश्वविद्यालयों, कम्युनिटी महाविद्यालयों, लिबरल आर्ट कालेजों एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों आदि के द्वारा दी जाती है। प्राथमिक एवं माध्यमिक के बाद यह शिक्षा का तृतीय स्तर है जो प्रायः ऐच्छिक होता है। इसके अन्तर्गत स्नातक, परास्नातक एवं व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि आते हैं।

उच्च शिक्षा की भारतीय ऐतिहासिक परंपरा:
उच्च शिक्षा की भारतीय ऐतिहासिक परंपरा की बात की जाए तो ऐसी शिक्षा का स्वरूप विशदता के साथ भारतवर्ष में प्रतिष्ठित हुआ था। उच्च शिक्षा देनेवाले भारतीय गुरुकुलों की बड़ी विशेषता यह थी कि उनमें प्रारंभिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा शिष्याध्यापक प्रणाली (मोनीटोरियल सिस्टम) से दी जाती थी। सबसे ऊपर के छात्र अपने से नीचे वर्ग के छात्रों को पढ़ाते थे और वे अपने से नीचे वाले को। यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के पुत्र ही भर्ती किए जाते थे और वर्णों के अनुकूल ही बालकों को शिक्षा भी दी जाती थी तथापि नित्यधर्म, स्वच्छता, शील और शिष्टाचार की शिक्षा प्रत्येक छात्र को दी जाती थी और प्रत्येक छात्र को गुरुकुल में रहकर आश्रम का समस्त कार्य स्वयं करना पड़ता था। कुछ गुरुकुल तो इतने बड़े थे कि वहाँ एक–एक कुलपति, दस सहस्र ऋषियों और ब्रह्मचारियों का अन्य दानादि देकर उनको पढ़ाने का प्रबंध करते थे और छात्र भी अपने सामर्थ्य के अनुसार गुरुदक्षिणा देते थे किंतु कोई भी राजा इन गुरुकुलों के प्रबंध में हस्तक्षेप नहीं करता था। इन गुरुकुलों का प्रारंभ वास्तव में उन परिषदों से हुआ जिनमें चार से लेकर 21 तक विद्वान और मनीषी किसी नैतिक सामाजिक या धार्मिक समस्या पर व्यवस्था देने के लिये एकत्र होते थे। कुछ गुरुकुलों ने वर्तमान सावास विश्वविद्यालय (रेजीडेंशल यूनिवर्सिटी) का रूप धारण कर लिया था। इन गुरुकुलों में वेद, वेदांग, दर्शन, नीतिशास्त्र, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, दंडनीति, सैन्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद और आयुर्वेद आदि सभी विषयों की उच्चतम शिक्षा दी जाती थी और जब छात्र, सब विद्याओं में पूर्ण निष्णात हो जाता था तभी वह स्नातक हो पाता था। ब्राह्मणों को यह छूट थी कि वे चाहें तो जीवन भर विद्यार्जन करते रहें।धीरे धीरे विश्वविद्यालयों ने वर्तमान रूप धारण किया। इनमें उच्चतम शिक्षा का अर्थ है हाई स्कूल के पश्चात महाविद्यालयों (कालेजों) या व्यावसायिक संस्थाओं (ट्रेनिंग कालेज, मेडिकल कालेज, इंजिनियरिंग कालेज, टैक्निकल कालेज, कला महाविद्यालय, संगीत महाविद्यालय, शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय, न्यायनीति (लॉ), कृषि, वाणिज्य महाविद्यालय आदि) में दी जाने वाली शिक्षा जिसके लिये विश्वविद्यालय से उपाधि या राजकीय विभागों की ओर से परीक्षा लेकर प्रमाणपत्र दिए जाते हैं। उच्च शिक्षा देने का अधिकांश कार्य विश्वविद्यालय ही करते हैं। लेकिन यह तभी संभव होता है जब राज्य व्यवस्था इस दिशा में सकारात्मक पहल करती है। जब सबके लिए समुचित शिक्षा का बंदोबस्त करती है।

भारत का उच्च शिक्षा तंत्र : वास्तविक स्थिति:
भारत का उच्च शिक्षा तंत्र अमेरिका, चीन के बाद विश्व का तीसरा सबसे बडा उच्च शिक्षा तंत्र है। विगत 50 वर्षों में देश के विश्वविद्यालयों की संख्या में 11.6 प्रतिशत, महाविद्यालयों में 12.5 प्रतिशत, विद्यार्थियों की संख्या में 60 प्रतिशत और शिक्षकों की संख्या में 25 प्रतिशत वृद्धि हुई है। सभी को उच्च शिक्षा के समान अवसर सुलभ कराने की नीति के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है और साथ ही उच्च शिक्षा की अवस्थापना सुविधाओं पर विनियोग भी तदनुरुप बढा है। लेकिन दुर्भाग्य है कि इसके बावजूद भी उच्च शिक्षा की सुलभता का सपना साकार नहीं हो पा रहा है। आजादी के सातदशक बाद भी देश में शिक्षा की स्थिति दयनीय है और उच्च शिक्षा का बुरा हाल है। संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो भारत की उच्चतर शिक्षा व्यवस्था अमरीका और चीन के बाद तीसरे नंबर पर आती है लेकिन जहाँ तक गुणवत्ता की बात है दुनिया के शीर्ष 200 विश्वविद्यालयों में भारत का एक भी विश्वविद्यालय नहीं है।

शोध में पिछड़ा भारत:
15 साल पहले मैनेजमेंट गुरु पीटर ड्रकर ने एलान किया था, "आने वाले दिनों में ज्ञान का समाज दुनिया के किसी भी समाज से ज्यादा प्रतिस्पर्धात्मक समाज बन जाएगा। दुनिया में गरीब देश शायद समाप्त हो जाएं लेकिन किसी देश की समृद्धि का स्तर इस बात से आंका जाएगा कि वहाँ की शिक्षा का स्तर किस तरह का है।"
भारत में शिक्षा क्षेत्र की बड़ी शख्सियत और ज्ञान आयोग के प्रमुख सैम पित्रोदा का भी कहना है, "आजकल वैश्विक अर्थव्यवस्था, विकास, धन उत्पत्ति और संपन्नता की संचालक शक्ति सिर्फ शिक्षा को ही कहा जा सकता है।"
इंफोसिस के प्रमुख नारायण मूर्ति ध्यान दिलाते हैं कि अपनी शिक्षा प्रणाली की बदौलत ही अमरीका ने सेमी कंडक्टर, सूचना तकनीक और बायोटेक्नॉलॉजी के क्षेत्र में इतनी तरक्की की है। इस सबके पीछे वहाँ के विश्वविद्यालयों में किए गए शोध का बहुत बड़ा हाथ है। दुनिया भर में विज्ञान और इंजीनियरिंग के क्षेत्र में हुए शोध में से एक तिहाई अमरीका में होते हैं। इसके ठीक विपरीत भारत से सिर्फ 3 फीसदी शोध पत्र ही प्रकाशित हो पाते हैं। भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण के प्रमुख नंदन नीलेकणी कहते हैं कि भारत को अपने डेमोग्राफिक लाभांश का फायदा उठाना चाहिए। इस समय भारत की लगभग आधी आबादी 25 साल से कम उम्र की है। इनमें से 12 करोड़ लोगों की उम्र 18 से 23 साल के बीच की है। अगर इन्हें ज्ञान और हुनर से लैस कर दिया जाए तो ये अपने बूते पर भारत को एक वैश्विक शक्ति बना सकते हैं।

निजीकरण का नफा–नुकसान:
कॉरनेल विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर और वर्ल्ड बैंक के मुख्य अर्थशास्त्री कौशिक बसु कहते हैं, "आम धारणा ये है कि अगर कोई लाभ कमाना चाहता है तो वो अच्छी शिक्षा कैसे दे सकता है। ये एक गलत तर्क है। यह तो उसी तरह सोचने की तरह हुआ कि अगर टाटा मोटर्स को लाभ कमाना है तो इसे छोटी कार बनाने में रुचि नहीं रखनी चाहिए। हालांकि वास्तविकता यह है कि अगर उसे लाभ कमाना है तो उसे छोटी कार ही बनानी चाहिए। इसी तरह शिक्षा में अगर कोई लाभ कमाने वाली कंपनी विश्वविद्यालय शुरू करना चाहती है तो हमें उसके आड़े नहीं आना चाहिए।"

गुणवत्ता की समस्या:
21वीं सदी की उच्च शिक्षा को तब तक स्तरीय नहीं बनाया जा सकता जब तक भारत की स्कूली शिक्षा 19वीं सदी में विचरण कर रही हो। स्कूली शिक्षा की मूलभूत सुविधाओं में पिछले एक दशक में जबरदस्त वृद्धि हुई है लेकिन पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन (प्रोब) के सदस्य एके शिव कुमार कहते हैं कि असली समस्या गुणवत्ता की है। ये एक कड़वा सच है कि भारत के आधे से अधिक प्राथमिक विद्यालयों में कोई भी शैक्षणिक गतिविधि नहीं होती।अब समय आ गया है कि चाक और ब्लैक बोर्ड के जमाने को भुला कर गांवों में भी प्राथमिक शिक्षा के लिए तकनीक का इस्तेमाल किया जाए।

मनमोहन सिंह ने साल 1991 में जो सुधार भारतीय अर्थव्यवस्था में किए थे उसी स्तर के सुधारों की दरकार साल 2013 में भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में है। अब विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जैसे संस्थानों से आगे देखने की जरूरत है जिन्हें 50–60 साल पहले स्थापित किया गया था।

सैम पित्रोदा कहते हैं, "आज नियम–कानूनों और भ्रष्टाचार की वजह से शिक्षा के क्षेत्र में घुसना लगभग नामुमकिन हो गया है। अगर आप घुस भी जाते हैं और आपको लाइसेंस मिल भी जाता है तो आप शिक्षा की गुणवत्ता नहीं बनाए रख सकते। जबकि होना इसका ठीक उलटा चाहिए।"

एक आंकड़े के मुताबिक–बिहार राज्य के सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले पटना विश्वविद्यालय में 48 फीसदी शिक्षकों के पद रिक्त हैं। वही मगध विश्वविद्यालय में 68 फीसदी शिक्षकों के सहारे काम चलाया जा रहा है। अगर लखनऊ विश्वविद्यालय की बात करें तो यहां शिक्षकों के 26 फीसदी पद रिक्त हैं। प्रोफेसर के 50 फीसदी से अधिक, रीडर के 29 फीसदी और प्रवक्ता के 21 फीसदी पद खाली हैं। इसी तरह गोरखपुर विश्वविद्यालय में शिक्षकों के 40 फीसदी, आगरा के डा0 भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय में 46 फीसदी, मेरठ के चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय में 38 फीसदी और बनारस के संपूर्णानंद विश्वविद्यालय में 40 फीसदी पद रिक्त हैं।

भारत में उच्च शिक्षा की दुगर्ति की चर्चा विश्व स्तर पर होने लगी है। यूनेस्को की एक रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया के 70 प्रतिशत वयस्क निरक्षर नौ देशों में रहते हैं। जिनमें सर्वाधिक 24.74 प्रतिशत भारत में हैं। उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में भारत अभी भी विकसित देशों से काफी पीछे है। आज विकसित देश उच्च शिक्षा के लिए जहां कुल बजट का 6 से 7 प्रतिशत खर्च कर रहें हैं वही भारत अभी भी राष्ट्रीय आय का मात्र 0.42 प्रतिशत धन खर्च कर रहा है। जबकि ज्ञान आयोग द्वारा सुझाव दिया गया है कि शिक्षा पर व्यय को राष्ट्रीय आय के 1.5 प्रतिशत किया जाना चाहिए। अल्प बजट में उच्च शिक्षा के लक्ष्य को नहीं साधा जा सकता।

हाल ही में केंद्र सरकार द्वारा उच्च शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने तथा फर्जी विश्वविद्यालयों पर रोक लगाने के उद्देश्य से यूजीसी अधिनियम में बदलाव कर इसके स्थान पर उच्च शिक्षा आयोग की स्थापना करने का फैसला लिया गया। ऐसे समय में जब कौशल निर्माण तथा शैक्षिक अवसरों तक पहुँच होना अति महत्त्वपूर्ण है, केंद्र सरकार द्वारा तैयार किये गए उच्च शिक्षा आयोग के प्रावधानों के प्रभाव दूरगामी सिद्ध हो सकते हैं। वर्तमान समय में उच्च शिक्षा के सामने सबसे बड़ी चुनौती अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाले तेजी से विकसित होते तकनीकी परिवर्तनों की आवश्यकता को पूरा करना तथा आवश्यक कौशल वाले कार्यबल का निर्माण है। सुधार के फलस्वरूप एक ऐसी संस्था का निर्माण होना चाहिये जिसके पास विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के अनुकूल बौद्धिक कोष के साथ–साथ गतिविधि के उभरते क्षेत्रों में सार्वजनिक वित्तपोषण के लिये योजना बनाने का दृष्टिकोण हो।

भारतीय उच्चशिक्षा में अनिवार्य परिवर्तन:

भारत में उच्च शिक्षा की व्यवस्था काफी पुरानी हो चुकी है। आज की स्थितियों से उसका कोई तालमेल नहीं रह गया है। अब उसमें ऐसे बुनियादी बदलाव लाने की जरूरत है, ताकि इस शिक्षा का सही उपयोग हम अपने आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के क्षेत्र में प्रभावी ढंग से कर सकें। हमारे सभी उद्योग धंधों के लिए मानव पूंजी की जरूरत है। इस पूंजी का निर्माण शिक्षा के माध्यम से ही हो सकता है। लेकिन आज यहां सिर्फ पागल बनाने वाली ऐसी डिग्रियों की भीड़ है, जो उपयोगिता की दृष्टि से बहुत काम की नहीं साबित हो रही हैं।

भारत में शिक्षा, उच्च शिक्षा और अनुसंधान के रास्ते में एक बड़ी बाधा है धन की कमी। यदि कोई केंद्रीय वित्त मंत्री उच्च शिक्षा के लिए बजट का 24 प्रतिशत हिस्सा इस मद में आवंटित कर दे, तो यहां का पूरा परिदृश्य ही बदल जाएगा। यदि ऐसा हो, तो शायद भारतीय छात्रों को विदेशी संस्थानों में नहीं भागना पड़ेगा। अपने देश में ऐसी संस्थाएं बहुत कम हैं। सरकारी संस्थानों के ज्यादातर प्राध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता व रिसर्च के बदले अपने वेतन–भत्तों पर ही ध्यान रखते हैं। हाल में जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर ने इस स्थिति पर बिल्कुल सीधी टिप्पणी करते हुए कहा कि हमारे शिक्षक छात्रों को पढ़ने के लिए आकर्षित करने में विफल रहे हैं। क्या वे सचमुच विश्वविद्यालय में पढ़ा रहे हैं? वे खिड़की से बाहर झांक कर जरा देखें कि निजी संस्थानों में पढ़ाने वाले उनके समानधर्मी शिक्षक नौकरी की सुरक्षा और वेतन कट जाने के भय से किस तरह प्रबंधन की धुनों पर नाच रहे हैं, क्योंकि वहां काम और आउटपुट की उपयोगिता है। इसके अलावा हमारा शिक्षा तंत्र दूसरे तमाम विभागों की ही तरह भ्रष्टाचार से भी ग्रस्त है। बदले मूल्यांकन प्रक्रियायहां सिफारिश के आधार पर नियुक्तियां होती हैं। घटिया किताबों को पाठ्यक्रमों में लगाने की सिफारिश की जाती है। उपस्थिति और काम के बारे में सख्त नियम नहीं लागू किए जाते, न ही उनकी मॉनिटरिंग की जाती है। यहां मौलिक रिसर्च बहुत कम

होता है। सेमिनार, प्रशिक्षण कार्यशालाओं और संबंधित संकाय द्वारा विकास कार्यक्रमों का अनुपात काफी कम रहता है। मानवीय कोणों से अध्ययन करने में भी तेजी से गिरावट आ रही है। और हमारे विश्वविद्यालय आज राजनीति का अखाड़ा बन गए हैं। वहां के चुनाव पार्टी लाइन पर लड़े जा रहे हैं। कुलपतियों की नियुक्ति राजनीतिक आधार पर होती है। शैक्षिक सत्रों में हड़तालें की जाती हैं। इस स्थिति को बदलने के लिए विश्वविद्यालयों में मूल्यांकन प्रक्रिया में आमूल–चूल सुधार की आवश्यकता है।

निष्कर्ष:

यह कहना किंचित ही अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा कि भारत में उच्च शिक्षा रुग्ण अवस्था में है और पुरातन तथा जीर्ण–शीर्ण हो चुके आधारों पर टिकी हुई है। वस्तुतः शिक्षा के बिना मानव जीवन व्यर्थ समझा जाता है और शिक्षा को बढ़ावा देने के लिये उल्लेखनीय प्रयास भी किये गए हैं। शिक्षा के अधिकार अधिनियम के तहत प्रारंभिक शिक्षा को अनिवार्य घोषित किया गया है, किन्तु उच्च शिक्षा की राह में अब भी अनेक बाधाएँ हैं और गुणवत्तापरक शिक्षा अभी भी दिवास्वप्न बनी हुई है। किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था कितनी उन्नत है, इस तथ्य का मूल्यांकन तीन मापदंडों के आधार पर किया जाता है। पहला मापदंड है, उच्च शिक्षा तक कितने युवाओं की पहुँच हैय दूसरा मापदंड है, क्या उच्च शिक्षा न्याय–संगत है? और तीसरा है, उच्च शिक्षा की गुणवत्ता कैसी है? यह बहुत दुःख की बात है कि इन तीनों ही मापदंडों पर हम विफल रहे हैं। इक्कीसवीं सदी के शुरुआती दौर में भारत की शिक्षित युवा पीढ़ी ने सूचना और संचार तकनीक के क्षेत्र में उसे अत्यंत सम्मानजनक स्थान दिलाया है। नई कार्य संस्कृति के अंतर्गत भारत की वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्र की क्षमताओं को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भरपूर सराहना मिल रही है। बहुत अधिक स्वायत्तता देने के पीछे एक शंका यह जाहिर की जाती है कि कहीं विश्वविद्यालय अपने आप में ही निरंकुस न बन जाएँ! इसके लिये हमें अमेरिकी मॉडल से सीख लेनी होगी जहाँ विश्वविद्यालयों में प्रतिस्पर्द्धा का स्तर इतना ऊँचा है कि कोई भी विश्वविद्यालय श्रेष्ठतम फैकल्टी के लिये अध्यापकों और छात्रों को सर्वोत्तम सुविधाएँ प्रदान करने से पीछे नहीं हटता। अमेरिका में यदि कोई फैकल्टी, विश्वविद्यालय प्रशासन से संतुष्ट नहीं है तो वह अपने पूरे संसाधनों व अनुसन्धान, और यहाँ तक कि अपने छात्रों के साथ एक विश्वविद्यालय से दूसरे विश्वविद्यालय में चला जाता है। अतः विश्वविद्यालय कभी भी निरंकुश नहीं हो पाते। 21वीं सदी की उच्च शिक्षा को तब तक स्तरीय नहीं बनाया जा सकता, जब तक भारत की स्कूली शिक्षा 19वीं सदी में विचरण करती रहेगी। स्कूली शिक्षा की मूलभूत सुविधाओं में पिछले एक दशक में जबरदस्त वृद्धि हुई है, लेकिन असली समस्या गुणवत्ता की है। ये एक कड़वा सच है कि भारत के आधे से अधिक प्राथमिक विद्यालयों में कोई भी शैक्षणिक गतिविधि नहीं होती। अतः अब समय आ गया है कि चाक और ब्लैक बोर्ड के जमाने को भुलाकर शिक्षा के लिये तकनीक का इस्तेमाल किया जाए।

सन्दर्भ सूची

B.K. Passi and P.Singh : "Value Education", National Psychological Corporation, Kacheri Ghat, Agra, 2000.

B.r. Goyal : "Documents on Social, Moral and Spiritual Valves in Education," NCERT, New Delhi, 1977.

जे0लोढा : ''अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में मूल्यपरक शिक्षा का प्रारूप'', भारतीय आधुनिक शिक्षा, जनवरी, 2004

J.S. Rajput, : " Symphony of Human Values in Education," NCERT, 2001.

के0 चमोला : ''मूल्यः अर्थ तथा अवधारणा,'' भारतीय आधुनिक शिक्षा, अप्रैल, 2014.

एम0के0 सिंह : ''शिक्षा तथा भारतीय समाज,'' लायल बुक डिपो, मेरठ, 2016.